डॉ. भीम राव आंबेडकर

डॉ. भीम राव आंबेडकर

एस के अग्रवाल

प्रभात प्रकाशन, दिल्ली
ISO 9001:2008 प्रकाशक

डॉ. भीम राव आंबेडकर

जिस स्थान पर और जिन परिस्थितियों में जन्म मिला, उसके अनुकूल आचरण को ही भाग्यलेख मान लेना तो अत्यंत सहज है। ऐसा तो पशु भी करते ही हैं, परंतु मानव को यदि सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा गया है, तो इसके पीछे कारण केवल इतना ही है कि वह इस भाग्यलेख को मिटाकर अपनी इच्छाशक्ति के बूते पर अपना भाग्य स्वयं लिख सकता है, और वैसा लिख सकता है, जैसा वह चाहता है। इच्छाशक्ति की यही अदम्य दृढ़ता मिलती है, डॉ. भीम राव आंबेडकर के जीवनचरित में। अछूत-संतान से लेकर 'भारत-रत्न' की उपाधि तक पहुँचने तक का उनका सारा इतिहास ही कड़े संघर्ष की गाथा है।

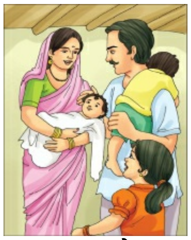

डॉ. भीम राव आंबेडकर का जन्म 14 अप्रैल, 1891 को महाराष्ट्र में महार जाति के एक साधारण परिवार में हुआ। इस जाति को महाराष्ट्र में अछूत समझा जाता था और इनके साथ शेष समाज का व्यवहार ठीक वैसा ही था जैसा कि देश के दूसरे भागों में अछूत समझी जानेवाली जातियों के साथ होता था। इनके पिता का नाम श्री रामजीराव और माता का नाम श्रीमती भीमाबाई था। अस्पृश्य समझी जाने के बावजूद महार जाति एक वीर जाति थी। इस जाति के लोग वीर योद्धा होते थे, इस कारण उन्हें सेना में आसानी से भरती कर लिया जाता था, परंतु सेना का कार्यकाल बहुत लंबा नहीं होता था। भीम राव आंबेडकर के पिता रामजीराव भी सेना में थे और सेवानिवृत्त हो चुके थे। उन्हें सेना से पचास रुपए बतौर पेंशन मिला करते थे, परंतु परिवार के भरण-पोषण के लिए यह पर्याप्त नहीं था। घर में हमेशा किसी-न-किसी वस्तु का अभाव बना ही रहता था।

वह समय ऐसा था, जब अछूतों की परछाईं भी उच्च वर्ग के लोगों पर नहीं पड़ सकती थी। उन्हें रास्ते में आवाज देते हुए चलना पड़ता था। समाज के शेष वर्ग के लोगों से बात करते हुए उन्हें दूर और नीचे स्थान पर खड़ा होना पड़ता था। मंदिरों व अन्य सार्वजनिक स्थान, जैसे—कुएँ, तालाब आदि से उन्हें दूर रखा जाता था। उन्हें अपने लिए पानी की व्यवस्था अलग से करनी पड़ती थी। उनकी बस्ती भी प्राय: गाँव के अंत में अलग-थलग होती थी। उनके बच्चों को किसी विद्यालय में प्रवेश नहीं मिलता था।

उनके लिए केवल कुछ ऐसे कार्य निश्चित थे, जिन्हें समाज के दूसरे वर्ग के लोग नहीं करते थे। देश के कई स्थानों पर उनकी स्थिति अत्यंत शोचनीय ही नहीं, वरन् नारकीय बनी हुई थी।

जातीय भेदभावों के अलावा पूरे देश में एक गंभीर समस्या और भी थी—अंग्रेजों का अत्याचार। पूरा देश गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ था।

भीम राव के पिता धार्मिक स्वभाव के एक सेवापरायण व्यक्तिथे। साधु-संतों का सत्संग और स्वाध्याय करने में उनकी विशेष रुचि थी; परंतु अपनी इस इच्छा को उन्हें मन में ही रखना पड़ता था। इधर, घर की आर्थिक स्थिति काफी खराब होती जा रही थी। अंतत: उन्होंने बंबई जाने का निर्णय लिया। ऐसा नहीं था कि शहरों में जाति-पाँति की समस्या नहीं थी, लेकिन उसका रूप ग्रामीण क्षेत्रों जितना विकराल नहीं था।

बालक भीम राव जब मात्र 6 वर्ष के थे, तभी उनकी माता का देहांत हो गया। एक अस्पृश्य परिवार में जन्म लेने के कारण बालक भीम राव को बचपन से ही पग-पग पर अन्याय और सामाजिक कुरीतियों का सामना करना पड़ा था, इसलिए उनमें बचपन से ही उन बुराइयों के खिलाफ लड़ने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई थी।

भीम राव की प्रारंभिक शिक्षा महाराष्ट्र के डापोली कस्बे में और उसके बाद सतारा में हुई। भीम राव व उनके भाई को विद्यालय में प्रवेश अत्यंत कठिनाई से मिल पाया था। बड़े भाई आनंदराव और भीम राव एक साथ ही पढ़ते थे। अछूत होने के कारण उन्हें कमरे के एक कोने में फटे-पुराने टाट पर बैठना पड़ता था। इसके अलावा बार-बार अध्यापकों और साथियों का अपमानजनक व्यवहार भी सहना पड़ता था।

कुछ दिनों बाद भीम राव अपने पिता के साथ बंबई आकर रहने लगे। वहाँ एक छोटे से कमरे में सारे सामान के साथ-साथ दोनों व्यक्ति जैसे-तैसे रहते थे। कमरा इतना अधिक छोटा था कि उसमें दोनों को बारी-बारी से सोना पड़ता था।

बंबई में रहते हुए ही भीम राव ने एल्फिंस्टन हाई स्कूल में दाखिला ले लिया था। पढ़ने में उनकी विशेष रुचि थी। स्कूल के अध्यापकों और सहपाठियों से बार-बार अपशब्द सुनते हुए और उनके दुर्व्यवहारों को झेलते हुए भी भीम राव ने पढ़ाई के प्रति अपनी रुचि तथा लगन में कभी कमी नहीं आने दी। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि एक दिन शिक्षा के कारण ही उनके जीवन में भारी परिवर्तन आएगा, इसलिए अपनी पढ़ाई में वे कठोर श्रम किया करते। आगे चलकर उनका यही विश्वास और श्रम रंग लाया। सन् 1907 में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद 17 वर्ष की आयु में भीम राव का विवाह रमाबाई नाम की 9 वर्षीया एक कन्या के साथ हो गया। विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी।

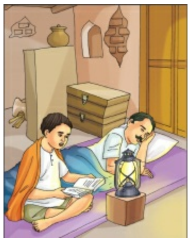

अपनी मेहनत और लगन के बल पर भीम राव लगातार पढ़ाई में सफल होते जा रहे थे। धीरे-धीरे उन्होंने बी.ए. पास कर लिया। उसके बाद वे संस्कृत पढ़ना चाहते थे, लेकिन नीची जाति का होने के कारण उन्हें संस्कृत की शिक्षा देने के लिए कोई तैयार नहीं हुआ।

बी.ए. पास करने के बाद भीम राव ने बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ की सेना में नौकरी कर ली। उन्हीं दिनों उन्होंने विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का अध्ययन किया। इसी दौरान उनके पिता का देहांत हो गया।

महाराजा गायकवाड़ उत्तम विचारों के एक सरल व्यक्ति थे। उनका दृष्टिकोण मानवतावादी था। भीम राव की पढ़ाई में रुचि और योग्यता से प्रभावित होकर राजा ने इन्हें पढ़ने के लिए अमेरिका भेज दिया। वहाँ न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय में इनका दाखिला हो गया। अमेरिकी लोगों के व्यवहार और रहन-सहन से भीम राव बहुत प्रभावित हुए। वहाँ जाति-पाँति का कोई भेदभाव नहीं था। लोग स्वतंत्र थे। वहाँ व्यक्ति का सम्मान जाति के आधार

पर नहीं, बल्कि उसकी योग्यता और कार्यों के आधार पर किया जाता था। भीम राव के लिए यह एक नया संसार था। इससे पहले ऐसी कल्पना करना भी उनके लिए कठिन था।

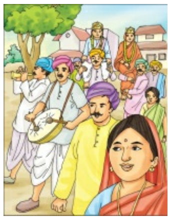

कोलंबिया विश्वविद्यालय से एम.ए. की परीक्षा पास करने के बाद भीम राव ने पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था पर एक शोध-प्रबंध तैयार किया। सन् 1924 में उन्हें पी-एच.डी. की उपाधि मिली। उसके बाद उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय छोड़ दिया और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में दाखिला ले लिया। इसी बीच बड़ौदा के राजा द्वारा दी जानेवाली सहायता की अवधि समाप्त हो गई, जिसके कारण इन्हें बंबई वापस लौटना पड़ा।

बंबई में इन्हें सीडेनहोम कॉलेज में अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए नियुक्त किया गया, लेकिन यहाँ भी उन्हें छुआछूत और भेदभाव की उसी समस्या का सामना करना पड़ा। वे अपने विषय के विद्वान् थे। पढ़ाने की उनकी शैली भी उत्तम थी। इस कारण शीघ्र ही वे छात्रों के बीच लोकप्रिय होने लगे। उनके सहयोगियों से उनकी यह प्रगति सहन नहीं हुई और उन्होंने भीम राव का विरोध करना शुरू कर दिया। इन सबसे भीम राव के दिलो-दिमाग में फिर से लंदन घूमने लगा। जल्दी ही वह समय आ गया, जब डॉ. भीम राव आंबेडकर दोबारा लंदन गए। लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स से एम.एस-सी. करने के बाद उन्होंने 'बार एट लॉ' की उपाधि भी प्राप्त की। तत्पश्चात् वे बंबई लौट आए।

बंबई में रहकर डॉ. भीम राव आंबेडकर ने वकालत शुरू कर दी। हत्या के एक मुकदमे में उन्होंने शानदार जीत हासिल की। यहीं से इनके भाग्य का सितारा चमकने लगा।

वकालत के साथ-साथ डॉ. आंबेडकर ने समाज-सुधार का कार्य भी आरंभ कर दिया। छुआछूत और जातीय भेदभाव का अभिशाप तो वे बचपन से ही झेलते आ रहे थे, इसलिए उन्होंने महाद और नासिक के अछूतों के सत्याग्रह का नेतृत्व किया। इसके अलावा अछूतों के उद्धार के लिए उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। सन् 1930 में अछूतों के प्रतिनिधि के रूप में गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन गए। वहाँ भी उन्होंने समाज में अछूतों की दशा को प्रभावी ढंग से सामने रखा और उन्हें सम्मानजनक स्थान दिलाने की जोरदार वकालत की।

लंदन से लौटकर डॉ. आंबेडकर ने अहमदाबाद में गांधीजी से मुलाकात की। गांधीजी भी उस समय अछूतों के उद्धार के लिए प्रयासरत थे। दोनों ने अछूतों की समस्या के संबंध में विचार-विमर्श किया, परंतु दोनों के विचारों में असमानता थी।

डॉ. आंबेडकर का विचार था कि अछूतों को अलग से राजनीतिक अधिकार दिए जाएँ, जबकि गांधीजी का विचार था कि इनको हिंदू समाज का ही अंग मानते हुए समान अधिकार दिए जाएँ। इस प्रकार एक ही समस्या के समाधान के संबंध में दोनों के विचार विपरीत थे।

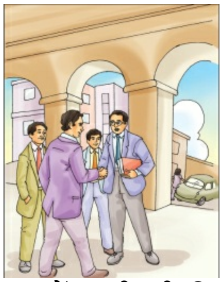

कांग्रेस के विचार से अछूतों को संयुक्त चुनाव में भागीदारी मिलनी चाहिए थी। गांधीजी अछूतों को अलग से प्रतिनिधित्व देने के सर्वथा विरुद्ध थे, लेकिन डॉ. आंबेडकर चाहते थे कि केंद्रीय विधानमंडल के चुनावों में अछूतों को अलग से प्रतिनिधित्व दिया जाए। इस संबंध में ब्रिटिश सरकार से बात करने के लिए डॉ. आंबेडकर लंदन भी गए। वहाँ उन्होंने अछूतों की समस्या और उनके नारकीय जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला। डॉ. आंबेडकर के व्यक्तित्व और उनकी योग्यता से प्रभावित होकर बहुत से ब्रिटिश पदाधिकारी इनके समर्थक बन गए।

अंतत: डॉ. आंबेडकर के प्रयत्नों से अछूतो को अलग मतदान करने और अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार मिल गया।

गांधीजी पहले ही अछूतों को अलग से प्रतिनिधित्व देने के विरुद्ध थे, इसलिए जब उन्हें इस बारे में पता लगा तो उन्होंने इस निर्णय केविरोध में आमरण अनशन की घोषणा कर दी, जिससे अंतत: इस निर्णय को रद्द कर दिया गया।

इस निर्णय के बाद कांग्रेस ने अछूतों को विशेष सुविधाएँ देनी आरंभ कर दीं, जिसके परिणामस्वरूप अछूतों के प्रति हिंदुओं की भावना में भी काफी परिवर्तन आया। पं. मदन मोहन मालवीय ने एक भरी सभा में अछूतों को कुओं, तालाबों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों के उपयोग का अधिकार दिए जाने की घोषणा की। उस सभा में यह घोषणा भी की गई कि उस दिन के बाद से किसी को अछूत नहीं कहा जाएगा। इसके लिए 'अस्पृश्यता निवारण संघ' की स्थापना की गई, जो कि आगे चलकर 'हरिजन सेवक संघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। गांधीजी ने भी 'हरिजन' नाम से एक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया।

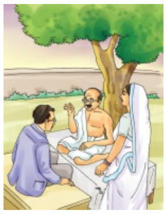

गांधीजी और डॉ. आंबेडकर के प्रयासों से अछूतों की स्थिति में काफी सुधार आने लगा। डॉ. आंबेडकर उन दिनों लॉ कॉलेज के आचार्य थे, लेकिन वे अपने इस कार्य से संतुष्ट नहीं थे। वास्तव में वे स्वतंत्र रूप से सार्वजनिक सेवा में उतरना चाहते थे, इसलिए उन्होंने नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और अछूतों के उद्धार-संबंधी कार्यों में पूरी तरह से जुट गए।

डॉ. आंबेडकर ने अनुभव किया कि अछूतों की स्थिति धीरे-धीरे सुधर तो रही थी, किंतु आशाजनक परिणाम अभी भी बहुत दूर हैं। हिंदू समाज के अधिकांश उच्चवर्गीय लोगों का अछूतों के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं था। लंबे समय से जो रूढ़ियाँ समाज में व्याप्त थीं, उन्हें रातोरात बदल पाना संभव भी नहीं था। यह सब देखकर डॉ. आंबेडकर के मन में गहरी पीड़ा होती थी। उन्हें इस बात का गहरा दु:ख था कि केवल जाति को आधार बनाकर किस प्रकार एक मानव दूसरे मानव पर अत्याचार कर सकता है। उनके मन में बार-बार ये विचार आते कि सभी

मनुष्यों की पहचान केवल मनुष्यता से क्यों नहीं हो सकती? क्यों सबको सम्मान से जीने का अधिकार नहीं मिल सकता? धीरे-धीरे उनके मन में हिंदू धर्म की संकीर्णता और हिंदू समाज के प्रति घृणा सी उत्पन्न होने लगी।

इस प्रकार, हिंदू समाज और हिंदू धर्म के भेदभावपूर्ण व्यवहार के कारण डॉ. आंबेडकर का हिंदू धर्म के प्रति विश्वास डगमगाने लगा और बौद्ध धर्म की ओर उनका झुकाव बढ़ने लगा। छात्र जीवन में ही गुरु कृष्णाजी केलुरकर ने उन्हें बताया था कि बौद्ध धर्म मनुष्यों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता।

सन् 1942 में डॉ. आंबेडकर ने नागपुर में भारतीय अछूत महासभा का अधिवेशन बुलाया। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि अछूत हिंदू समाज के अंग नहीं हैं। सामाजिक रूप से अलग होने के कारण उन्हें भी अन्य हिंदुओं के समान ही अधिकार और सुविधाएँ मिलनी चाहिए। उन्हीं दिनों उन्होंने 'भारतीय अनुसूचित जाति संघ' की स्थापना की।

डॉ. आंबेडकर की विद्वत्ता से प्रभावित होकर भारत के तत्कालीन वाइसराय ने उन्हें अपनी कार्यकारिणी का सदस्य घोषित कर दिया। इससे उनको अछूतों की सेवा का एक उचित अवसर प्राप्त हो गया। इनके प्रयासों से ही अब अछूतों को अनेक सुविधाएँ मिलने लगी थीं। सरकारी नौकरियों में भी उनके लिए स्थान आरक्षित कर दिए गए।

9 दिसंबर, 1946 को नई दिल्ली में संविधान सभा का अधिवेशन शुरू हुआ। इस सभा का प्रमुख कार्य था— स्वतंत्र भारत के लिए संविधान बनाना। डॉ. राजेंद्र प्रसाद को इसका सभापति चुना गया था। इन्हीं दिनों डॉ. आंबेडकर ने भारत के अल्पसंख्यकों के संबंध में 'राज्य और अल्पसंख्यक' के शीर्षक से एक निबंध तैयार किया और मार्च 1947 में इसे संविधान सभा में पेश कर दिया। संविधान सभा के अन्य सदस्यों पर इस निबंध का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। उसी वर्ष 29 अप्रैल को सरदार वल्लभभाई पटेल ने एक प्रस्ताव रखा, जिसके आधार पर छुआछूत को सदा के लिए कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया। इससे डॉ. आंबेडकर को बहुत प्रसन्नता हुई।

डॉ. आंबेडकर कानून के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने अनेक देशों के संविधानों का गहन अध्ययन किया था। इस कारण उन्हें संविधान सभा की प्रारूपण समिति का अध्यक्ष चुना गया। इस बात से वे बहुत प्रसन्न हुए कि अंततः उन्हें देश की सेवा करने का अवसर प्राप्त हो ही गया।

डॉ. आंबेडकर ने अब तक अछूतों के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए थे। उन्होंने कई शिक्षण संस्थानों की स्थापना की थी। इसी दौरान कानून मंत्री के रूप में उन्होंने हिंदू कोड बिल पास करवा लिया था और स्वयं बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। उनके साथ अनेक हरिजनों ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया था।

उनकी अवस्था अब ढलने लगी थी। वे 80 वर्ष से अधिक के हो चुके थे। उनकी शारीरिक शक्ति धीरे-धीरे क्षीण

हो रही थी, परंतु मन में अभी भी अपार उत्साह था। वे नित नए कार्यों की योजनाएँ बनाते रहते थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे इस देश के अछूत कहे जानेवाले वर्ग के लिए इतना कुछ कर दें, जिससे उस पीड़ा का लेशमात्र भी शेष न रहे, जिसे उन्होंने जीवन भर सहा था।

आशाओं की लौ अभी शेष थी, परंतु दीये का तेल चुकने लगा था। अंतत: जीवन भर संघर्षरत रहा यह देशभक्त महापुरुष 5 दिसंबर, 1956 को चिरनिद्रा में लीन हो गया।

❑❑❑